

अँगूठी

आप भी वही बात समझ रहे होंगे जो सब कह रहे हैं। मीरा ने आत्महत्या कर ली। मैं देखा जाए तो इसमें कुछ गलत नहीं। गलत हो भी कैसे सकता है! पहले घर में झगड़ा हुआ। फिर वह घर से चली गई और रात-भर गायब रही।

घर से निकलकर जाते हुए उसे कई लोगों ने देखा। चौराहे के गणेश पान वाले से पूछिए। उसकी दुकान पर अलबत्ता चीखने लगती है—“मार डाला रे मेरी बच्ची को। खा गई डायन उसे”—बिल्कुल ही होश गँवा बैठी है वह इस सदमे से। उसके पापा दो दिन से कमरे में ही बन्द हैं। उसकी सूरत देखना दूधर हो गया है। बरामदे में उसकी बुआ जरूर आने वाली औरतों से चिरी आपको दिखाई देंगी। ये भी ज्यादा कुछ नहीं बताती। ऑप्सू पोछती, कह उठती है—“क्या बताएँ बहनजी। थोड़ी बहुत उल्टा-सीधा तो इस उम्र में हो ही जाता है। माँ-बाप से कहन-सुनन भी होती है। पात्ती सेंती लड़की, यूँ चली गई।”

मीरा की लाश के ठुकड़े सवरे ही रेलवे लाइन पर मिले थे, लड़कों के कॉलेज के पास जहाँ शार्डिन्ग हैं। वहीं एक झाड़ी में दुपड़ा उलझा पड़ा था। अब ये सारी

बातें एक धागे में पिरो दें तो लोगों की बातों पर विश्वास हो जाएगा। वैसे भी अपने आसपास की बहु-बेटियों, खासतौर पर जवान लड़कियों के लिए कुछ उल्टा-सीधा सुनने के लिए लोग हमेशा तैयार बैठे रहते हैं। दूसरों के फटे में उँगली डालने में आनन्द तो मिलता है।

मीरा एक सत्रह-अठारह साल की जवान लड़की थी। बहुत खूबसूरत नहीं तो बुरी भी नहीं। फिर वह उम्र ऐसी होती है जो हर लड़की में खूबसूरती का एक

अलग पैमाना लेकर आती है। उम्र का नया चढ़ाव, नई उम्रों, नई कल्पनाएँ, नई आशाएँ। नजरें ही दूसरी हो जाती हैं। सारी दुनिया एक नए रंग में रँग जाती है।

चिड़ियों की चहचहाहट, फूलों की रंगत, नीले आसमान में रुई के फाहों जैसे बादल

जो क्षण-प्रतिक्षण अपना रूप बदलते हैं—उस उम्र में एक नया तालाब लेकर आते हैं। कविताओं की पंक्तियाँ, गीतों की धुनें नित नए अर्थ देती हैं। बहुत कुछ होता है इस दुनिया से लेने के लिए और इस दुनिया को देने के लिए। अपना जीवन,

अपना अस्तित्व एक नई महत्ता का एहसास कराने लगता है।

बस्तात के बाद छलछलाती नदी-सी मीरा, उम्र के इसी पायदान पर पैर रखा

था। सौंवाला रंग और खिलने लगा था—सवरे के समय फूलों पर चमकती ओस

की बूँद-जैसा। आँखें भरी-भरी जो इस उम्र में देखती कम हैं, बोलती आज हैंसती

ज्यादा हैं। मतलब यह कि मीरा एक भरा-पूरा जीवन थी—हँसता, खिलखिलाता,

बेहद उम्मीदों से भरा एक भविष्य था।

मीरा एक ठीक-ठाक घर से थी। पिता नौकरीपेशा। एक प्राइवेट फर्म में

अकाउंटेंट। ख़ासी तनखा मिल जाती। एक लड़का, मीरा से दो साल बड़ा। मीरा

की माँ एक सीधी-सादी औरत थी। आम मध्यवर्गीय घरों जैसी। उसकी ठोपी उसके

सिर पर और इसकी ओरत उसके सिर पर रखकर काम निकालने वाली नौबत तो

कभी-कभी उस घर में भी आ जाती जो अक्सर हमारे-आपके घरों में भी चलता

है। यह दूसरी बात है कि बाहरी टीमदाम से पलस्तर लगा रहता है—छेद ढँके रहते

हैं। मैं बातों की उड़ान का क्या हिसाब। मीरा की सुमन बहनजी से पूछो। कॉलेज

में पढ़ाती हैं। अपनी नियुक्ति होने के बाद स्टाफ रूम में बैठने लगीं तो मालूम

हुआ कि कोई भी नौकरी का जरूरतमंद नहीं। सब अपना खाली समय बिताने

के लिए या सिर्फ शौक के लिए नौकरी कर रहे हैं। सुमन बहनजी को यह जानकर

बहुत शर्म आई। वे तो सिर्फ जरूरत के लिए नौकरी करने पर मजबूर हुईं।

सुमन बहनजी के चार छोटे भाई-बहन हैं। एक भाई एम.एस.सी. में पढ़

रहा है। दो-एक साल में शायद वह कुछ ठिकाने पर लग पाए तो उनका कुछ बोझ

हल्का हो। सुमन बहनजी की एक छोटी बहन राधा मीरा की दोस्त है और मीरा

के साथ पढ़ती है।

हरियाली तीज का दिन। मीरा को सुमन बहनजी के घर जाना था और राधा

से लेकर कुछ नोट्स उतारने थे। तय हुआ कि मीरा दोपहर में ही आ जाएगी।

पहले पढ़ाई होगी। फिर झूला डाला जाएगा। वे लोग झूला झूलेंगी—गाना गाएँगी।

फिर मिलकर खाना पकाया जाएगा। खाएँगे-पीएँगे, थोड़ा मौज-मस्ती करेंगे। शाम

होने से पहले वह घर वापस आ जाएगी।

मीरा नहार्-धोई। नया सलवार-सूट पहना। दो चोटी मूँचीं। काजल लगाया।

माथे पर बिंदी लगाई सितारे जैसी, छोटी-चमकती। दो-क्षण अपने को निहारती रही

शीशे में और फिर हल्के से मुस्करा दी।

ड्रेसिंग टेबल पर अँगूठी लगी थी। मीरा की बुआजी की अँगूठी। बीच में बड़ा-सा

नग लाल रंग का, किनारे पर छोटे-छोटे हरे रंग के पन्ने। खिलते फूल-सी अँगूठी—दहकते

अंगार-सी अँगूठी जिसे उसने उँगली में डाल लिया। उँगली में घुमाती रही, देखती

रही। फिर उतारकर रख दी, वापस उसी जगह पर। इधर-उधर देखती, उसने अपनी

काँपी निकाली, पेन निकाला और चलने को तैयार। एक बार फिर शीशे में अपने

को देखा। बिंदी कुछ ठीक से गोल नहीं थी। उसे ठीक किया। अँगूठी वहीं रखी

थी। मन नहीं माना। दुबारा उँगली में डाल ली। क्या हर्ज है! पहनकर चली जाए।

आकर वापस कर देगी। खूब मजा आएगा। राधा इसे देखकर जरूर कुछ-न-कुछ

कहेगी। सोचेगी कि उसकी मँगनी हो गई है! वह भी चुप रहेगी। हाँ भी नहीं कहेगी

और इन्कार भी नहीं करेगी। राधा का भाई प्रदीप। वह तो यही कहेगा कि, देखा!

मैं तो कहता था कि लड़कियों को क्या जरूरत है किताबों से सिर मारने की। तुम्हारे

मम्मी-पापा तो इसीलिए तुम्हें पढ़ा रहे हैं कि अच्छा पति मिल जाए। बस! अब क्या

है। मँगनी हो गई, काम खत्म। क्या करना अब नोट्स उतारकर। तवा और पतिला

उतरो अब।....बहुत मजेदार बातें करता है प्रदीप, अपनी बहन राधा को तो चिढ़ाता

ही है, उसे भी नहीं बख्शाता, उसी-उसी-कुछ कहता ही रहेगा।

बुआजी नहा नहीं थीं। मीरा को पास गई। माँ रसोई में थी।

“माँ, यह अँगूठी पहन जाऊँ मैं?”

“अरे हट, रख दे। तेरी बुआ की अँगूठी है। पराई चीज का क्या शौक करना

री। जा, वहीं रख दे।”

“मैं पूछ लूँ बुआजी से?”

और दौड़ गई वह बाथरूम की ओर।

“भाई, माँ। मैंने बुआजी से पूछा लिया है। मैं जा रही हूँ—आ जाऊँगी

चार-पाँच बजे तक।”

और अँगूठी उँगली में डालकर मीरा चली गई।

राधा के घर खूब अच्छा रहा। नोट्स उतारने में उसे काफी समय लग गया।

फिर खाना बनाया। जमकर खाया। खूब गप्पबाजी की। सुमन बहनजी तथा और

सब घर पर ही थे। प्रदीप बाहर गया हुआ था। दोपहर के बाद मीरा और राधा

की कुछ सहेलियाँ भी आ गईं। मीरा जैसा सोच रही थी, वैसा ही हुआ। राधा

तथा उसकी दूसरी सहेलियों ने जब अँगूठी देखी तो उसे खूब छेड़ा। खूब जुमलेबाजी

की। उसने भी नहीं बताया कि वह किसकी अँगूठी है। बस, मुस्कराती रही सहेलियों

के सामने—“यह तो टाप सीक्रेट है। खुद अंदाजा लगाओ कि क्या बात हो सकती

है—अब कौन है वह भाग्यशाली, यह हम खुद कैसे बता दें? अँगूठी का राज बताओ

तो जानें।

बहरहाल, खूब ठिठोली हुई। मस्ती से गाने गाए—झूलें में बैठे। शाम होते-होते

वह घर चली आई।

कपड़े बदलकर वह बाहर आ गई। माँ रसोई में थी। सोचा कि माँ का कुछ

हाथ बटा दे, फिर पढ़ने बैठेगी। रसोई में आई तो माँ ने पूछा—

“अँगूठी तुआ को वापस कर दी?”

“अँगूठी!” उसने हाथ की ओर देखा। अँगूठी नदारद। थोड़ी-सी टीली तो

थी, लेकिन ऐसी टीली नहीं थी कि उसकी ओर देखा। वह तो बहुत सावधान थी।

धक्के-रह गई। माँ ने उसका फक पड़ता चेहरा देखा तो वह भी घबड़ा गई।

“क्यों, क्या हुआ? कहाँ डाल आई?”

“कहाँ नहीं माँ! उँगली में ही तो थी। कहाँ रह गई!”

और वह दौड़ गई कमरे की तरफ जहाँ उसने अभी कपड़े बदले थे। फ्लिंग

पर देखा, बिस्तर उलट दिया, नीचे, अलमारी के नीचे, ड्रेसिंग टेबल पर, उसके नीचे,

कोनों में—सारा कमरा छान मारा। बाहर दरवाजे से चलकर दुबारा उन्हीं जगहों पर

देखा, जहाँ-जहाँ वह गई थी। अँगूठी नहीं मिली।

“मर जा नासपीटी। इसीलिए मना कर रही थी। मर अब। तेरी बुआ हाथ-हत्या

मचाएगी। जा, भागकर जा और देख रास्ते में, राधा के घर। जा जल्दी....।”

मीरा बदहवासों जैसी उन्हीं कपड़ों में भागी गई। सारे रास्ते आँख गड़ा-गड़ाकर

देखती रही। राधा के घर, एक-एक कमरा छान मारा। हर चीज उलट-पलट दी।

घर का सारा सामान टटोल लिया। किचन, किचन के सारे डिब्बे, बर्तन, कूड़ेदान,

नालियाँ। राधा की किताबों की शेल्फ, मेज, अलमारी और तो और, उसका बाथरूम

पाखाता। कुछ भी तो नहीं बचा। अब? अब क्या करे? क्या करे वह? उसके पैर

काँपने लगे। कलेजा जैसे मुँह में आ रहा हो। किस मुँह से वापस लौटे? उसका

दिल चाहता कि वह यहीं रह जाए। लेकिन कैसे? घर तो लौटना ही था। फिर एक

बार आँखों की पुतलियाँ सड़क पर चिपकाए, कदम-कदम नापती वह घर की ओर

बढ़ने लगी। हाथ में टॉर्च ले ली थी। लेकिन अँगूठी न मिलनी थी, सो नहीं मिली।

घर में घुसी। पैर ठिठक गए। सामने ही बुआजी दीख गई—उफनती-उबलती।

पूरे महाभारत की तैयारी थी। भयभीत हिरनी-सी उसने अपनी नजरें उन पर गड़ा

दीं। पीछे-पीछे माँ थी। तमतमाया लाल चेहरा।

“क्यों, मिल गई?” माँ ने लगभग चीखते हुए पूछा। स्पष्ट था कि माँ और

बुआजी में उसके पीछे कहां-सुनी हो चुकी थी।

घोर विवशता के फंदों में जकड़ी मीरा चुप थी। अपनी डबडबाई आँखें उसने

धीरे से नीचे झुका लीं। होंठ काँप रहे थे। हे भगवान्! यह धरती फटे और वह

धरती में समा जाए। यह क्या हो गया! किस कुछड़ी में उसने अँगूठी उँगली में

डाली! क्यों डाली! हे भगवान्, आज रक्षा कर दो किसी तरह। बुआ को दया आ

जाए....

उसे इस तरह काँपते हुए, चुप खड़े देखकर माँ समझ गई। उसने झपटकर

पास पड़ी झाड़ू उठा ली और मीरा को पीटना शुरू कर दिया।

“नासपीटी! तभी मना किया था। मत पहन। परायी चीज और शौक पूरा

कर करमजली। देख तो ली होती कि उसकी चीज थी। खो आई अँगूठी। मर नहीं

गई तू भी वहीं पर....”

“देखो भाभी, मुझे तो सुनाओ मत मुझ। न मुझे दिखाने के लिए यह नाटक

करो। मेरा गहना खुल आ और वह भी तायके में। क्या जवाब दूँगी मैं?”

“कमबख्त! तेरी जगह से सुननी और न सुननी आज जब सुन ली मैंने।

नुकसान कराया सो अलग। तू मर जाए तो मुझे चैन पड़े....।”

माँ ने मानो बुआजी की बात सुनी ही न हो।

मीरा पिटती रही—सिसकती रही। एक बार भी उसने माँ का हाथ नहीं

पकड़ा। क्षोभ और अपमान ने मानो उसके शरीर को-सुनकर कर दिया हो। वह होंठ

भीचे हुए थी—बहुत जब्त किए थी, लेकिन रोकते-रोकते भी उसकी रुलाई फूट ही

पड़ी। क्या करे वह! कहाँ जाए!

“बुआ, तू ही दया कर दे। मैं पैसे जोड़-जोड़कर तुम्हारी अँगूठी के दाम

वापस कर दूँगी—जिन्दगी-भर तुम्हारी गुलामी करूँगी....।”

माँ ने झाड़ू फेंक दी थी। उसका बकना और मीरा को कोसना जारी था।

...माँ भी रो रही थी। मीरा की मौत माँग रही थी—अपनी मौत माँग रही थी।

बुआ अन्दर कमरे में चली गई। मीरा उकड़ू बैठी—घुटनों में सिर दिए? सिसक रही

थी।

बाहर दरवाजा खुलने की आवाज सुनाई दी।

“मेरी साइकिल में भी ताला लगा देना प्रमोद।” पापा की आवाज सुनाई

दी। भैया और पापा भी आ गए थे।

“ऐ-मीरा! ऐसे कैसे बैठी है! क्या हुआ? रो क्यों रही है?”

पापा को देखकर उसकी रुलाई और तेज हो गई। उसने अपना सिर घुटनों

के अन्दर और ज्यादा कर लिया।

“क्या बात हो गई भाई! बताती क्यों नहीं! कहाँ है तेरी माँ....?”

प्रमोद एक सेकण्ड उसके पास खड़ा रहा, फिर पापा को पीछे-पीछे भीतर चला

गया। पापा अन्दर माँ से बात कर रहे थे। माँ और बुआजी की तेज आवाजें सुनाई

देने लगीं। फिर उसने सुना, पापा उसे आवाज दे रहे थे, अन्दर बुला रहे थे। वह

नहीं जाएगी उनके सामने। ऐसे ही बैठी रहेगी। जन्म जिन्दगी यहीं बैठी रहेगी,

मुँह छिपाए।

थोड़ी देर बाद प्रमोद बाहर आया।

“चल अन्दर। पापा बुला रहे हैं।”

उसने कोई जवाब नहीं दिया।

“चलती है कि नहीं या लगाऊँ दो हाथ? चल भीतर! हमें सब कुछ मालूम

हो गया है।” प्रमोद ने उसकी बाँह पकड़ ली।

“छोड़ दो मुझे, छोड़ दो।” मीरा ने हाथ झटक दिया। “इसे क्या हक है

मेरे ऊपर गुस्सा दिखाने का? अपने कारनामे भूल गया?”—मीरा यह सोच रही थी

थी कि प्रमोद ने गढ़ से उसकी पीठ पर हाथ मारा और उसकी बाँह पकड़ी लगभग

घसींटा हुआ उसे कमरे के भीतर ले आया और खड़ा कर दिया।

माँ, पापा, बुआ—फिर सबके सामने एक शर्मनाक पेशी। यह अग्नि-परीक्षा

क्या यूँ ही अनवरत चलती रहेगी? समय किस कदर खिंचता चला जा रहा था!

शर्म में डूबा यह क्षण कितना लम्बा हो रहा था!

पापा का चेहरा उतरा हुआ था। थकी आवाज। नजरें मीरा के चेहरे पर गड़ी

हुई।

“देखा मीरा, तुमने अपनी बुआ की अँगूठी पहनी ही क्यों—फिर पहनी थी

तो तुम्हें ध्यान रखना चाहिए था। बोलो, कहाँ रह गई अँगूठी?”

“पापा—पता नहीं पापा! मैंने जान-बूझकर कहाँ नहीं गिराई। मुझे माफ कर

दो पापा, मुझे माफ कर दो!” दोनों हाथ जोड़कर मीरा सिसकने लगी। उसकी

आवाज भर्रा गई थी। उसके पैर काँपने लगे। दीवार के सहारे उसने सिर टिका

दिया।

“तुमने ही बहुत सिर चढ़ा रखी है भैया, वरना इतनी बड़ी लड़की और इतनी

लापरवाह! इतनी बड़ी लड़कियाँ पूरा-पूरा घर देखती हैं। बड़ी-बड़ी गृहस्थी चलाती

हैं। हमारे वक्त तो तुमने हमें डिटर भी रो-रोकर कराया। आज तुम्हारी अपनी

लाइली। कॉलेज जा रही है। दुनिया-भर के फ़ैशन कर रही है। घूम रही है—फिर

रही है। तिस पर यह हाल।”

“क्या चाहती हो बीबी तुम? जान ले लो इसकी अगर इससे तुम्हारा कुछ

बनता हो तो। दूसरी अँगूठी बनवा लो न अपने भाई साबब से कह कर।”

माँ से बोले बिना न रहा गया। उसने मीरा के प्रति अपनी ननद के ईर्ष्याभाव

को हमेशा महसूस किया था।

पापा एकदम बीच-बचाव की सी मुद्रा में बोल—

“नई भाई, नुकसान तो हुआ ही है उषा का। फिर इस महीने में जाएगी

वापस। उसकी विवाह। वैसे ही इतना खर्चा होगा। कहाँ से बनेगी अँगूठी? एक

हजार से क्या कम लगेगा?”

“बस, यही तो बात है भैया! भाभी को कोई मतलब नहीं इन सब बातों

से। खुद मजे में रहती हैं। न सास, न ससुर। सबके बीच में रहना पड़े सुखाल

में तब मालूम हो। शादी में जो सामान दिया तुम लोगों ने उसकी वो धाँजियाँ

उड़ाईं वहीं सबने कि बस। आज तक ताने सुनती हूँ। कभी खबर ली तुम लोगों

ने? अब करवा चौथ पर भिजवा दिए दो सी रुपये। न कपड़े, न सामान। अब

यह इल्जाम और लगेगा कि मायके वालों को मरती है। मायके वालों को जेवर

दे आई अपने।”

“बस तबको उषा! जो कुछ भी किया, तुम्हें मालूम है, सब कैसे किया गया।

पिताजी क्या छोड़ गए थे सिवा कर्ज के? फिर कौन हमारी रिश्तके की कमाई है!

जितना हो सकता था, किया। तुम इतना परेशान मत हो उषा! न हो पाएगा तो

इसकी माँ का जेवर बेचकर बनवा दूँगा तुम्हारी अँगूठी। बस।” पापा को गुस्सा

चढ़ने लगा। बुआ यह देखकर सकपका गई।

बुआ ने पापा को कहीं भीतर तक आहत कर दिया था। पापा की नजर

फिर मीरा पर पड़ी जो सहमी, सिक्की दीवार के सहारे खड़ी थी, एक पैर थोड़ा-सा

उठाए और दीवार से टिकाए। उसके पैरों में झनझनाहट-सी हो रही थी। बिजली

की लहर पैरों से होती हुई ऊपर की दौड़ जाती। लेकिन पापा की आँखों से

निकलती घृणा की लहर उसे फिर सुन्न करने लगी।

“तेरे भी दिमाग बहुत खराब हो गए हैं। यह सब शौक अपने घर जाकर

करना। जरूरत क्या थी तुझे अँगूठी पहनने की? क्या जान निकल रही थी तेरी

उसके बिना?”

बुआ की खिसियाहट बढ़ने लगी। उसे अब कुछ कहना बेहद जरूरी लगने

लगा।

“मुझे लगता है कहीं किसी को दे आई है यह। क्यों री मीरा, कहीं किसी

को प्रेजेंट तो नहीं कर आई हो? सोचा, पराई जाए गोदान में....।”

“कैसी बातें करती हो बीबी! दे किसे जाएगी? अरे, लापरवाही करी, गिरा

आई कहीं पर तो भुगतेंगी....”

अपनी खिसियाहट और रौब में परिहास का पुट लाने की कोशिश करती

हुई बुआ माँ को नजरअंदाज करती हुई बोली—

“क्यों, उस दिन कौन छोड़ने आया था तुझे मीरा? बातें तो उससे इस तरह

कर रही थी जैसे बहुत जान-पहचान हो!....देखो भाभी, तुम्हें बुरा तो बहुत लगता

है, लेकिन तुमने फूट बहुत दे रखी है। हमें तो कभी घर से निकलने भी नहीं दिया

थे। और न कभी ऐसे सहेलियों-दोस्तों के साथ घूमने-फिरने की इजाजत मिली।

खैर! हमारा तो क्या बिगड़ा। अच्छा ही रहा। अब अपनी औलाद पर नजर रखो।